R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-19, अङ्क-9 सितम्बर 2019 (1)

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

देह का भक्षण करनेवाली स्यालिनी के प्रति भी कोई द्वेष नहीं। तिर्यंचकृत उपसर्ग से पूर्णत: उदासीन, समाधि में लीन उसे भगवन्त अद्वितीय पुरुषार्थ के बल पर क्षायिकश्रेणी मांडकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

के संयुक्त तत्त्वावधान में

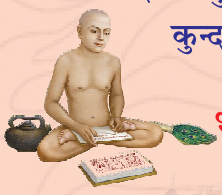

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(गुरुवार, 24 अक्टूबर से सोमवार, 28 अक्टूबर 2019)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं शिक्षण शिविर अध्यात्म, सिद्धान्त एवं जिनवरों की भक्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।

विद्वत समागम - दादाश्री विमलचंद झांझरी, उज्जैन; पण्डित राजेन्द्रकुमारजी, जबलपुर; पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां; डॉ. राकेश शास्त्री, नागपुर; डॉ. योगेशचन्द जैन, अलीगंज; पण्डित अरहन्त झांझरी, उज्जैन; पण्डित नगेश जैन, पिड़ावा; पण्डित मनोज जैन, जबलपुर एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि का लाभ प्राप्त होगा।

सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-19, अङ्क-9 (वी.नि.सं. 2545; वि.सं. 2075) सितम्बर 2019

दशलक्षण के दशधर्मों का...

दशलक्षण के दश धर्मों का, उत्सव आया प्यारा।
धर्म ध्यान और पूजन पाठ से, ज्यों दिश हो उजियारा॥
बोलो पर्यूषण की जय, बोलो दशधर्मों की जय- 2॥ टेक॥

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयम।
जो नर इन धर्मों को पाले, धन्य- धन्य हो जीवन।
इन दशधर्मों में है समाया, समयसार यह सारा॥
धर्मध्यान..... ॥1॥

तप और त्याग तो आभूषण है, इस मानव जीवन के।
आकिंचन और ब्रह्मचर्य है पूज्य है योगीजन के।
इन दश धर्मों के पालन से, सुधरे जीवन सारा॥
धर्मध्यान..... ॥2॥

मुनिदशा में उत्तम पालन, इन धर्मों का होता।
इन दशधर्मों से होती है परिणति निर्मल न्यारी।
हर अन्तर्मुहूर्त में मुनिवर, ध्याते शुद्धात्म न्यारा॥
धर्मध्यान..... ॥3॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
वरजू बहिन
सुपुत्र **श्री जवरचंदजी**
दुलीचंदजी हथाया
(थाणावाले) मुम्बई-7

क्या - कहाँ

मुनिधर्म के दस भेद	5
प्रथम प्रवचन	7
वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता	14
नवतत्त्व का ज्ञान....	20
मोक्षतत्त्व (3)	25
मैं खून नहीं पी सकता	27
आचार्यदेव परिचय शृंखला	
श्री विद्यानन्दस्वामी	28
समाचार-सार	31

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा में से

मुनिधर्म के दस भेद

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य—ये मुनिधर्म के दस भेद हैं ॥70॥

यदि क्रोध की उत्पत्ति का साक्षात् बहिरंग कारण हो, फिर भी किंचित् भी क्रोध नहीं करता [त्रैकालिक सर्वज्ञस्वभाव को समीप रखकर ज्ञाता ही रहता है] उसके क्षमाधर्म होता है ॥71॥

जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शील के विषय में कुछ भी गर्व नहीं करते, [नित्य ज्ञानचेतना में सावधान रहता है] उसके मार्दवधर्म होता है ॥72॥

जो मुनि कुटिलभाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है [अपने त्रैकालिक अकषाय आर्यस्वभाव—ज्ञ-स्वभाव में सरलता सहित रहता है।] उसके नियम से आर्जवधर्म होता है ॥73॥

दूसरों को संताप करनेवाले वचन को छोड़कर जो भिक्षु स्व-पर हितकारी वचन बोलता है, उसके [परिणामों की निर्मलता के कारण] सत्यधर्म होता है ॥74॥

जो मुनि उत्कृष्टतया कांक्षाभाव से निवृत्ति कर वैराग्यभाव से युक्त (नित्य निःकांक्षभाव से अवस्थित) रहता है, उसके शौचधर्म होता है ॥75॥

मन-वचन-काय की प्रवृत्तिरूप दण्ड को त्यागकर तथा इन्द्रियों को जीतकर [नित्यज्ञायक स्वभावभाव के बल द्वारा] जो व्रत और समितियों के पालनरूप चेष्टा करता है—[आत्मव्यवहार-वीतराग परिणति सहित है] उसके नियम से संयमधर्म होता है ॥76॥

विषय-कषाय के विनिग्रहरूप भाव को [वीतरागी निजपरिणाम को]

उत्पन्न करके जो ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा आत्मा की भावना करता है, उसके नियम से तपधर्म होता है ॥77॥

[त्रैकालिक निर्मोह ज्ञानस्वभाव में ही एकत्व के बल द्वारा] जो समस्त द्रव्यों के विषय में मोह का त्याग कर तीन प्रकार के निर्वेद की भावना करता है, उसके त्यागधर्म होता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥78॥

जो मुनि तन:संग-निष्परिग्रही होकर सुख-दु:ख देनेवाले अपने भावों का निग्रह करता हुआ [नित्य चिदानन्दपूर्ण स्वरूप में सन्तुष्ट-तृप्त रहता हुआ] निर्द्वन्द रहता है अर्थात् [स्वरूप में ही विश्रान्ति द्वारा] किसी इष्ट-अनिष्ट के विकल्प में नहीं पड़ता है, उसके आकिंचन्य धर्म होता है ॥79॥

जो स्त्रियों के सब अंग दीख पड़ें—तो उन्हें देखता हुआ भी उनमें खोटे भाव को छोड़ता है अर्थात् किसी प्रकार के विकारभाव को प्राप्त नहीं होता, निज परमात्मतत्त्व में आनन्दसहित लीन होता है, वह निश्चय से अत्यन्त कठिन ब्रह्मचर्यधर्म को धारण करने के लिये समर्थ होता है, उसको उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म होता है ॥80॥

प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिङ्ग

अहा! मुनिदशा कैसी होती है ? उसका विचार तो करो! छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले वे मुनि, स्वरूप में गुप्त हो गये होते हैं। **प्रचुर स्वसम्वेदन ही मुनि का भावलिङ्ग है और शरीर की नग्नता-वस्त्रपात्ररहित निर्ग्रन्थदशा, वह उनका द्रव्यलिङ्ग है।** उनको अपवाद-व्रतादि का शुभराग आता है, किन्तु वस्त्रग्रहण का अथवा अध:कर्म तथा औद्देशिक आहार लेने का भाव नहीं होता।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, 214, पृष्ठ 130

श्री समयसार नाटक पर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का धारावाही प्रवचन

प्रथम प्रवचन

गतांक से आगे

मिथ्यादृष्टि का लक्षण

धरम न जानत बखानत भरमरूप,
ठौर ठौर ठानत लराई पच्छपातकी।
भूल्यो अभिमानमैं न पाउ धरै धरनी मैं,
हिरदैमैं करनी विचारै उतपातकी।।
फिरै डांवाडोलसौ करम के कलोलिनिमैं,
ह्वै रही अवस्था सु बघूलेकैसे पातकी।
जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी,
ऐसौ ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी।।9।।

अर्थः– जो वस्तुस्वभाव से अनभिज्ञ है, जिनका कथन मिथ्यात्वमय है और एकान्त का पक्ष लेकर जगह-जगह लड़ाई करता है, अपने मिथ्याज्ञान के अंहकार में भूलकर धरती पर पांव नहीं टिकाता और चित्त में उपद्रव ही सोचता है, कर्म के झकोरों से संसार में डांवाडोल हुआ फिरता है अर्थात् विश्राम नहीं पाता सो ऐसी दशा हो रही है जैसे बघरूड़े में पत्ता उड़ता फिरता हैं, जो हृदय में (क्रोध से) तप्त रहता है, (लोभ से) मलिन रहता है, (माया से) कुटिल रहता है, (मान से) बड़े कुबोल बोलता है; ऐसा आत्मघाती और महापापी मिथ्यात्वी होता है ।

काव्य – 9 पर प्रवचन

अब उसके सामने यह बतलाते हैं कि विपरीत दृष्टिवाले मिथ्यादृष्टि जीव कैसे होते हैं ?

अज्ञानी जीव धर्म के स्वरूप को नहीं जानता। भगवान आत्मा चैतन्य का दल है। आत्मा धर्मी है और ज्ञान-आनन्द आदि उसके धर्म हैं, उनसे अज्ञानी अनजान है। वह कहता है कि हमें वस्तु के स्वरूप को जानकर क्या

करना है ?अँधेरे में भी गुड़ तो गुड़ ही लगता है, अतः हमें जानने की क्या जरूरत है ?अरे भाई ! गुड़ खाने जाते अँधेरे में जहर खा जायेगा तो मर जायेगा। वैसे ही वस्तु के स्वरूप को नहीं जाना तो विपरीत स्वरूप को अपना मानकर मर जायेगा। राग के भाव को आत्मा का भाव माननेवाला अज्ञानी जहर खाता है।

मिथ्यादृष्टि जो कोई कथन करता है, जो कोई भाव करता है; वे सब विपरीत श्रद्धावाले मिथ्यात्वमय ही होते हैं और वे मिथ्यात्व की भ्रमणा को ही बखानते है। अज्ञानी जगह-जगह एकान्त का पक्ष लेकर लड़ाई करता है कि नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा ही है अज्ञानी के ऐसे ही सब लक्षण होते हैं।

'भूल्यो अभिमान मैं न पाऊँ धरै धरनी मैं' -मिथ्यादृष्टि जीव अभिमान में डोलता है। ऐसा डोलता है कि पैर भी धरती पर नहीं रखता; मानो मैं ही सब कुछ हूँ। मिथ्यादृष्टि जीव के हृदय में कुछ कर डालने का उन्माद ही भरा होता है अर्थात् वह आकुल-व्याकुल हुआ करता है। ऐसा कर दूँ, वैसा कर दूँ ऐसी करनी का ही विचार करता रहता है। चित्त में उपद्रव का ही विचार करके तूफान मचाता होता है।

मिथ्यादृष्टि जीव कर्म के उदय में जुड़ने से अस्त-व्यस्त हुआ फिरता है अर्थात् अन्दर में कषाय का इतना जोर होता है कि विश्राम नहीं पाता। उसकी दशा तो ऐसी हो गयी है, जैसी तेज हवा में पत्ते-पत्तियों की होती है। मिथ्यात्व और कषाय के जोर में मानो उसे प्रसन्न कर दूँ, उसका नाश कर दूँ, उसका ऐसा कर दूँ -इस प्रकार डाँवाडोल हुआ करता है।

जिसका हृदय क्रोध से तृप्त है। जिसका हृदय लोभ से मलिन रहता है -किसी भी काम में उसको लोभ-आशा होती है कि इसमें से कुछ मिलेगा। जिसका हृद्य माया से कुटिल है और मान के भार से कुवचन बोलता है - ऐसा आत्माघाती और महापापी मिथ्यादृष्टि है। कवि ने ताती, कारी और कुटिल ऐसे शब्दों द्वारा चारों कषाय क्रोध, मान, माया और लोभयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव का वर्णन किया है। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव पर का घात तो

करे या न करे, परन्तु अपना ही घात कर रहा है; अत: वह आत्मघाती है, ब्रह्मघाती है और महापापी है।

इस मंगलाचरण में मिथ्यादृष्टि का कुछ काम नहीं है, परन्तु यह तो मात्र मिथ्यादृष्टि का स्वरूप वर्णन करके उसका ज्ञान कराया है।

बंदौं सिव अवगाहना, अरु बंदौं सिव पंथ।
जसु प्रसाद भाषा करौं, नाटकनाम गरंथ।।10।।

अर्थ:- मैं सिद्ध भगवान को और मोक्षमार्ग (रत्नत्रय) को नमस्कार करता हूँ, जिनके प्रसाद से देशभाषा में नाटक समयसार ग्रन्थ रचता हूँ।

काव्य - 10 पर प्रवचन

अब कविवर बनारसीदासजी सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण करके वंदन करते हैं।

किसी को ऐसा प्रश्न होता है कि सिद्धभगवान का आकार होता है या नहीं? उसका समाधान इस छन्द में आ जाये -ऐसी भाषा का प्रयोग यहाँ किया है।

'बदौ सिव अवगाहना' -सिद्धभगवान भी आत्मा हैं न! अत: उनका भी आकार होता है। सिद्धप्रभु अपने असंख्य प्रदेशी पूर्ण निर्मल आनन्दघन की अवगाहना में रहते हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ और 'सिवपंथ' अर्थात् रत्नत्रय को भी वंदन करता हूँ। सम्यग्दर्शन को नमस्कार सम्यग्ज्ञान को नमस्कार और सम्यक्चारित्र को नमस्कार। इस प्रकार मोक्ष और मोक्षमार्ग को नमस्कार करता हूँ कि जिसके प्रसाद से इस ग्रन्थ की रचना करता हूँ। इस प्रकार कवि निर्मान होकर कहता है कि मैं यह 'नाटकसमयसार' ग्रन्थ बनाता हूँ।

कविस्वरूप वर्णन

चेतनरूप अनूप अमूरति,
सिद्धसमान सदा पद मैरो।
मोह महातम आतम अंग,
कियौ परसंग महा तम घेरौ।।

ग्यानकला उपजी अब मोहि,
कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग,
वेगि मिटै भववास बसेरौ।।11।।

अर्थः- मेरा स्वरूप सदैव चैतन्यस्वरूप उपमा रहित और निराकार सिद्ध सदृश है। परन्तु मोह के महा अन्धकार का संग करने से अन्धा बन रहा था। अब मुझे ज्ञान की ज्योति प्रगट हुई है। इसलिए नाटक समयसार ग्रन्थ को कहता हूँ, जिसके प्रसाद से मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है और जल्दी संसार का निवास अर्थात् जन्म-मरण छूट जाता है।

काव्य - 11 पर प्रवचन

अब, ग्यारहवें श्लोक में कवि अपनी दशा का वर्णन करता है।

मेरा स्वरूप सदैव चैतन्य रूप, उपमारहित, निराकार सिद्धसमान है। द्रव्यदृष्टि से मैं ऐसा होने पर भी मैंने पर्याय में अपने असंख्य प्रदेशों में मोह का अन्धकार फैला दिया था। किसी कर्म ने मेरी ऐसी दशा नहीं की थी; परन्तु कर्म का संग करके, राग का संग करके अन्धा बन रहा था। वस्तु सिद्धसमान शुद्ध है; परन्तु मैं मोह के अन्धकार में ऐसा अन्ध बन गया था कि मुझे अपना स्वरूप दिखता ही नहीं था।

निश्चय से मेरा स्वरूप सिद्धसदृश होने पर भी मैंने ही मेरे आतम अंग में मोह का माहात्म्य लगाया था, इससे स्वरूप दिखता नहीं था। मेरी पर्याय में मोह के अन्धकार ने घेरा डाला था, उसके संग में मैं ऐसा अन्धा बन गया था कि शरीर, रागादि को ही निज मानता था। मैं अपने स्वरूप को देखता ही नहीं था; परन्तु अब मुझे ज्ञान की ज्योति प्रकट हुई है। इससे शरीर और रागादि को निज माननेरूप भ्रमणा अब टल गई है। अज्ञान टलकर स्वरूप का सम्यग्ज्ञान पर्याय में प्रकट हुआ है।

अब मुझे ज्ञानज्योति प्रकट हुई है। इससे मैं नाटक समयसार ग्रन्थ कहता हूँ, जिसके प्रसाद से मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है और शीघ्र संसार का

निवास अर्थात् जन्म-मरण छूट जाता है।

देखो! यह अपना आत्मा जवाब देता है कि यह ज्ञानकला प्रकटी है, उसके प्रसाद से शीघ्र संसार का अन्त हो जायेगा। जिसमें भव नहीं, भव का भाव नहीं -ऐसे स्वभाव का भान हुआ, उसे अब भव कैसा? मैं अल्प काल में संसार से मुक्त हो जाऊँगा, उसमें किसी की सहायता-मदद की आवश्यकता नहीं है।

अनादि से भव में बस रहा है, उसकी दशा कैसी है? वह तो नजरों से दिखती है न! अपना शरीर भी साथ नहीं देता। कितनी दवा लेनी पड़ती है? पुत्र भी सुख नहीं देता, दो दिन आकर मिलकर चला जाता है। अरे! समीप रहे तो भी वह सुख नहीं दे सकता। कोई किसी को सुखी करने में समर्थ नहीं है और स्वयं अज्ञान से अन्ध है -इस कारण दु:खी हैं।

कविलघुता वर्णन

जैसैं कोऊ मूरख महा समुद्र तिरिवेकौं,
भुजानिसौं उद्यत भयौ है तजि नावरौ।
जैसैं गिरि ऊपर विरखफल तोरिवेकौं,
बावनु पुरुष कोऊ उमगै उतावरौ।।
जैसैं जलकुंड मैं निरखि ससि-प्रतिबिम्ब,
ताके गहिबे कौं कर नीचौ करै टाबरौ।
तैसैं मैं अलपबुद्धि नाटक आरंभ कीनौ,
गुनी मोहि हसैंगे कहैंगे कोऊ बाबरौ।।12।।

अर्थ:- जिस प्रकार कोई मूर्ख अपने बाहुबल से बड़ा भारी समुद्र तैरने का प्रयत्न करे, अथवा कोई बौना मनुष्य पहाड़ के वृक्ष में लगे हुए फल को तोड़ने के लिये जल्दी से उछले, जिस प्रकार कोई बालक पानी में पड़े हुए चन्द्रबिम्ब को हाथ से पकड़ता है, उसी प्रकार मुझ मन्दबुद्धि ने नाटक समयसार (महाकार्य) प्रारम्भ किया, विद्वान लोग हँसी करेंगे और कहेंगे कि कोई पागल होगा।

काव्य – 12 पर प्रवचन

अब, बारहवें काव्य में अपनी लघुता को वर्णन करते हैं।

जैसे कोई मूर्ख मनुष्य नौका छोड़कर अपने बाहुबल से समुद्र तिरने का प्रयत्न करे अथवा पहाड़ के ऊपर उगे हुए वृक्ष का फल तोड़ने के लिए कोई बौना पुरुष शीघ्रता से उछले, उत्साह से उतावली करे; वैसा ही मेरा यह कार्य है ऐसी निर्मानता कवि दर्शाते हैं।

'टावरो' अर्थात् बालक जैसे पानी के कुण्ड में आकाश स्थित चन्द्र का प्रतिबिम्ब देखकर उसे लेने के लिये हाथ नीचे करता है, पानी में हाथ डालकर चन्द्रमा को पकड़ने का प्रयत्न करता है; वैसे ही इस नाटक समयसार को बनाने का महा-कार्य मुझ मन्दबुद्धिवाले ने प्रारम्भ किया है। मेरी बुद्धि तो थोड़ी है और मैंने कार्य बड़ा प्रारम्भ किया है।

कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य जो कि धर्म धुरन्धर महासमर्थ आचार्य हैं, उन्होंने समयसार जैसे महान शास्त्र को रचा। उसे मैंने अल्पबुद्धि होने पर भी पद्य में रचने का कार्य प्रारम्भ किया है, इससे गुणीजन - विद्वानजन तो मुझ पर हँसेंगे कि अरे! यह कोई तेरा कार्य है? यह तू क्या ले बैठा? क्या तू पागल हो गया है कि इस महान आचार्य के शास्त्र को पद्य में रचने बैठ गया है? इस प्रकार विद्वान मुझे पागल कहेंगे तो भले ही मुझे पागल कहो; परन्तु मैं तो भक्तिवश यह शास्त्र लिखना चाहता हूँ।

जैसैं काहू रतनसौं बींध्यौ है रतन कोऊ,
तामैं सूत रेसम की डोरी पोई गई है।
तैसें बुध टीकाकरि नाटक सुगम कीनौ,
तापरि अलपबुधि सूधी परिनई है।।
जैसें काहू देस के पुरुष जैसी भाषा कहैं,
तैसी तिनिहूं के बालकनि सीख लई है।
तैसैं ज्यौं गरंथकौ अरथ कह्यौं गुरु त्योंहि,
हमारी मति कहिवेकौं सावधान भई है।।13।।

अर्थ:– जिस प्रकार हीरा की कनी से किसी रत्न में छेद कर रक्खा हो तो उसमें रेशम का धागा डाल देते हैं, उसी प्रकार विद्वान् स्वामी अमृतचन्द्र आचार्य ने टीका करके समयसार को सरल कर दिया है, इससे मुझ अल्प-बुद्धि की समझ में आ गया। अथवा जिस प्रकार किसी देश के निवासी जैसी भाषा बोलते हैं वैसी उनके बालक सीख लेते हैं; उसी प्रकार मुझको गुरु-परम्परा से जैसा अर्थज्ञान हुआ है वैसा ही कहने को मेरी बुद्धि तत्पर हुई है।

काव्य-13 पर प्रवचन

अब पण्डित बनारसीदासजी कृत नाटक समयसार का तेरहवाँ काव्य चलता है।

जैसे किसी ने हीरा की कनी से रतन में छेद कर रखा हो तो उसमें रेशम का डोरा पिरो दिया जाता है, वैसे ही विद्वान स्वामी अमृतचन्द्राचार्य देव ने टीका करके समयसार को सरल कर दिया है तथा उसमें अमृतचन्द्राचार्य देव ने कलश लिखे और उन पर टीका करके श्री राजमल्लजी ने भी समयसार को सरल कर दिया है। इससे वह मेरे समान अल्पबुद्धियों को भी समझ में आ गया है।

रतन में छिद्र किया हुआ हो तो डोरा पिरोना सहज हो जाता है, वैसे ही अमृतचन्द्राचार्य देव और पाण्डे राजमल्लजी ने समयसार को सरल कर दिया है। इस कारण वह मेरी अल्पबुद्धि में भी समझ में आ गया है, मेरी अल्पबुद्धि सम्यक् बनी है।

जैसे जिस देश में जैसी भाषा बोली जाती हो, वैसी बालक सीख लेता है; वैसे ही मुझे गुरु परम्परा से जैसा अर्थ ज्ञान हुआ है, वैसा ही कहने के लिए मेरी बुद्धि तत्पर बनी है। भरतक्षेत्र का अद्वितीय नेत्र ऐसा यह अजोड़..... अजोड़ समयसार, उसे गुरुओं ने सरल बना दिया है। इससे ज्ञानगोचर हुआ और गुरु ने कहा, वैसी भाषा भी मैंने सीख ली है और तदनुसार कहने के लिए तत्पर हुआ हूँ।

क्रमशः

वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता

— विश्व के ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव —

गतांक से आगे

प्रश्न—मिथ्यात्वपरिणाम को बदलकर सम्यक्त्व करूँ—ऐसा तो लगता है न ?

उत्तर—देखो, ज्ञातास्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें मिथ्यात्व दूर हो ही गया है। सम्यक्त्वपरिणाम का उत्पाद हुआ, उस समय मिथ्यात्वपरिणाम वर्तमान नहीं होते; इसलिए उन्हें बदलना भी कहाँ रहा ? मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व करूँ—ऐसे लक्ष्य से सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु द्रव्यसन्मुख दृष्टि होने से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्वपरिणाम का अभाव हो ही गया है; इसलिए उस परिणाम को भी बदलना नहीं रहता। मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्वपर्याय प्रगट हुई, उसे भी आत्मा जानता है, किन्तु परिणाम के किसी भी क्रम को वह आगे-पीछे नहीं करता।

अहो! जिस-जिस पदार्थ का जो वर्तमान अंश है, वह कभी नहीं बदलता।— इसमें अकेला वीतरागीविज्ञान ही आता है। पर्याय को बदलने की बुद्धि नहीं है और 'ऐसा क्यों'—ऐसा विषमभाव नहीं है, इसलिए श्रद्धा और चारित्र दोनों का मेल बैठ गया। इस ९९ वीं गाथा में दो नौ इकट्ठे होते हैं और उनमें से सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र दोनों इकट्ठे हो जायें, ऐसा उच्च भाव निकलता है। जिस प्रकार नौ का अंक अफर (जो फिर न सके) माना जाता है, उसी प्रकार यह भाव भी अफर है।

त्रिकाली द्रव्य के प्रत्येक समय के परिणाम सत् हैं—ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है; द्रव्य सत् है और पर्याय भी सत् है; यह 'सत्' जिसे नहीं बैठा और पर्याय में फेरफार करना मानता है, उसे वस्तु के स्वभाव की, सर्वज्ञदेव की,

गुरु की या शास्त्र की बात नहीं जमी है, और वास्तव में उसने उन किसी को नहीं माना है।

त्रिकाली वस्तु का वर्तमान कब नहीं होता ?—सदैव होता है। वस्तु का कोई भी वर्तमान अंश ख्याल में लो, वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। वस्तु को जब देखो, तब वह वर्तमान में रही है। इस वर्तमान को यहाँ स्वयंसिद्धि सत् सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार त्रिकाली सत् पलटकर चेतन में से जड़ नहीं हो जाता, उसी प्रकार उसका प्रत्येक वर्तमान अंश है, वह सत् है, वह अंश भी पलटकर आगे-पीछे नहीं होता। जिसने ऐसे वस्तुस्वभाव को जाना, उसको अपने अकेले ज्ञायकपने की प्रतीति हुई, वही धर्म हुआ। और उसने देव-गुरु-शास्त्र को भी यथार्थरूप से माना कहा जाएगा।

तीनों काल के समय में तीनों काल के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; कोई भी एक समय का जो परिणाम है, वह पहले नहीं था और फिर उत्पन्न हुआ, इसलिए पूर्वपरिणाम के पश्चात्रूप से वह उत्पादरूप है, और उस परिणाम के समय पूर्व के परिणाम का व्यय है—पूर्व-परिणाम का व्यय होकर वह परिणाम उत्पन्न हुआ है, इसलिए पूर्व-परिणाम की अपेक्षा वही परिणाम व्ययरूप है, और तीनों काल के परिणाम के अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से वह परिणाम उत्पन्न भी नहीं हुआ है और विनाशरूप भी नहीं है—है वैसा है अर्थात् ध्रौव्य है। इस प्रकार अनादि-अनन्त प्रवाह में जब देखो, तब प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावरूप है।

किसी भी वस्तु की पर्याय में फेरफार करने की उमंग, सो पर्यायबुद्धि मिथ्यात्व है; उसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं है और ज्ञेयों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव की भी खबर नहीं है। अरे भगवान! वस्तु 'सत्' है न ? तो तू उस सत् के ज्ञान के अतिरिक्त दूसरा उसमें क्या करेगा ? तू सत् में फेरफार करना मानेगा तो सत् तो नहीं बदलेगा, किन्तु तेरा ज्ञान असत् होगा। जिस प्रकार वस्तु सत् है, उसी प्रकार उसे भगवान ने केवलज्ञान में जाना है, वही वाणी द्वारा कहा गया है—नवीन नहीं कहा गया। भगवान ने तो जैसा सत् था,

वैसा मात्र ज्ञान किया है; वाणी जड़ है, उसे भी भगवान ने नहीं निकाला। भगवान का आत्मा अपने केवल ज्ञानपरिणाम में वर्त रहा है और वाणी की पर्याय, परमाणुओं के परिणमन प्रवाह में वर्त रही है तथा समस्त पदार्थ अपने सत् में वर्त रहे हैं। ज्ञायकमूर्ति आत्मा तो जानने का कार्य करता है कि—'सत् ऐसा है।' बस, इसी का नाम सम्यग्दर्शन और वीतरागता का मार्ग है।

भगवान कैसे हैं ?—'सर्वज्ञ'—सर्व के ज्ञाता; किसी में राग-द्वेष या फेरफार करनेवाले नहीं हैं। भगवान की भाँति मेरे आत्मा का स्वभाव भी जानने का है—इस प्रकार तू भी अपने ज्ञातास्वभाव की श्रद्धा कर और पदार्थों में फेरफार करने की बुद्धि छोड़! जिसने अपने ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा की, वह अस्थिरता के राग-द्वेष का भी ज्ञाता ही रहा। जिसने ऐसे ज्ञानस्वभाव को माना, उसी ने अरहन्तदेव को माना, उसी ने आत्मा को माना, उसी ने गुरु को तथा शास्त्र को माना, उसी ने नवपदार्थों को माना, उसी ने छह द्रव्यों को तथा उनके वर्तमान अंश को माना; उसी का नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

'जानना' आत्मा का स्वभाव है। बस, जानना ही आत्मा का पुरुषार्थ है, वही आत्मा का धर्म है, उसी में मोक्षमार्ग और वीतरागता है। अनन्त सिद्धभगवन्त भी प्रतिसमय पूर्ण जानने का ही कार्य कर रहे हैं।

ज्ञान में स्व-पर दोनों ज्ञेय हैं। 'ज्ञान ज्ञाता है'—ऐसा जाना, वहाँ ज्ञान भी स्वज्ञेय हुआ। ज्ञान को रागादि का कर्ता माने या बदलनेवाला माने तो उसने ज्ञान के स्वभाव को नहीं जाना है—स्वयं अपने को स्वज्ञेय नहीं बनाया, इसलिए उसका ज्ञान मिथ्या है। वस्तु के समस्त परिणाम अपने-अपने समय में सत् हैं—ऐसा कहते ही अपना स्वभाव ज्ञायक ही है—ऐसा उसमें आ जाता है।

इस गाथा में क्षेत्र का उदाहरण देकर पहले द्रव्य का त्रिकाली सत्पना बतलाया, उसके त्रिकाली प्रवाहक्रम के अंश बतलाये, और उन अंशों में (परिणामों में) अनेकतारूप प्रवाहक्रम का कारण उनका परस्पर व्यतिरेक है—ऐसा सिद्ध किया। तपश्चात् सम्पूर्ण द्रव्य के समस्त

परिणामों को स्व-अवसर में वर्तनेवाला, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप बतलाया। इतनी बात पूर्ण हुई।

अब, प्रत्येक समय के वर्तमान परिणाम को लेकर उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना बतलाते हैं। पहले समग्र परिणामों की बात थी और अब यहाँ एक ही परिणाम की बात है; और फिर अन्त में परिणामी द्रव्य की ही बात लेकर द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलायेंगे।

पुनश्च, 'जिस प्रकार वस्तु का जो छोटे से छोटा (अन्तिम) अंश पूर्व प्रदेश के विनाशरूप है, वही (अंश) तत्पश्चात् प्रदेश के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुभयस्वरूप है (अर्थात् दो में से एक स्वरूप भी नहीं है।) उसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्णपरिणाम के विनाशस्वरूप है, वही तत्पश्चात् के परिणाम के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।'

असंख्य प्रदेशी आत्मा का कोई भी एक प्रदेश लो तो वह प्रदेश, क्षेत्र अपेक्षा से पूर्व के प्रदेश के व्ययरूप है, स्वयं अपने क्षेत्र के उत्पादरूप है और अखण्ड क्षेत्र अपेक्षा से वही ध्रौव्य है।—यह दृष्टान्त है। उसी प्रकार अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम में वर्तमान प्रवर्तित कोई भी एक परिणाम, पूर्व के परिणाम के व्ययरूप है, तत्पश्चात् के परिणाम की अपेक्षा से उत्पादस्वरूप है, और पहले-पीछे का भेद किये बिना सम्पूर्ण प्रवाहक्रम के अंशरूप से देखें तो वह परिणाम ध्रौव्यरूप है। इस प्रकार प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात ली, तब 'अपने-अपने अवसर में'—ऐसा कहकर उस प्रत्येक का स्वतन्त्र स्वकाल बतलाया था। और यहाँ एक परिणाम की विवक्षा लेकर बात करने से उन शब्दों का उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान एक ही परिणाम लिया, उसी में उसका वर्तमान स्वकाल आ गया।

वर्तमान वर्तनेवाला परिणाम, पूर्वपरिणाम के अभावरूप ही है; इसलिए पूर्व के विकार का अभाव करूँ—यह बात नहीं रहती; और वर्तमान में सत्‌रूप है, इसमें भी फेरफार करना नहीं रहता। ऐसा समझने पर, मात्र वर्तमान परिणाम की दृष्टि से परिणाम और परिणामी की एकता होने पर सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्व का व्यय है ही, मिथ्यात्व को दूर नहीं करना पड़ता। किसी भी परिणाम को मैं नहीं बदल सकता, मात्र जानता हूँ—ऐसा मेरा स्वभाव है—इस प्रकार ज्ञानस्वभाव की प्रतीति में सम्यक्त्वपरिणाम का उत्पाद और उसी में मिथ्यात्व का व्यय है ही। इसलिए मिथ्यात्व को दूर करूँ और सम्यक्त्व प्रगट करूँ—यह बात ही नहीं रहती। जहाँ ऐसी बुद्धि, वहाँ उस समय का सत्‌परिणाम स्वयं ही सम्यक्त्व के उत्पादरूप और मिथ्यात्व के व्ययरूप हैं, तथा एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित परिणामों के अखण्डप्रवाहरूप से वह परिणाम ध्रौव्य है। इस प्रकार प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है।

जिस प्रकार वस्तु सत् है, उसी प्रकार उसका वर्तमान भी सत् है। वस्तु के त्रिकाली प्रवाह में प्रत्येक समय का अंश सत् है; वर्तमान समय का परिणाम पूर्व के कारण नहीं है, किन्तु पूर्व के अभाव से ही अपनेरूप से सत् है। वह वर्तमान अंश पर से नहीं किन्तु अपने से है। प्रत्येक समय का वर्तमान अंश निरपेक्षरूप से अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् है।

सर्वज्ञ के अतिरिक्त वस्तुस्वरूप का ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं हो सकता। भाई! तू क्या करेगा? जगत के तत्त्व सत् हैं, उनकी पहली पर्याय के कारण भी दूसरी पर्याय नहीं होती, तब फिर तू उसमें क्या करेगा? तू तो मात्र ज्ञाता रह! इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मानेगा तो, वस्तु में तो कुछ भी फेरफार नहीं होगा किन्तु तेरा ज्ञान मिथ्या होगा।

वस्तु का वर्तमान अंश है, वह सत् है—इस प्रकार यहाँ तो वर्तमान प्रत्येक समय के परिणाम को सत् सिद्ध करना है। द्रव्य के आधार से अंश

है—यह बात इस समय नहीं लेना है। यदि द्रव्य के कारण परिणाम का सत्पना हो, तब तो सभी परिणाम एक-समान ही हों; इसलिए द्रव्य के कारण परिणाम का सत् है—ऐसा न लेकर, प्रत्येक समय का परिणाम स्वयं सत् है, द्रव्य ही उस वर्तमान परिणामरूप से वर्तता हुआ सत् है—ऐसा लिया है। प्रवाह का वर्तमान अंश उस अंश के कारण ही है। अहो! प्रत्येक समय का अकारणीय सत् सिद्ध किया है। समय-समय का सत् अहेतुक है। समस्त पदार्थों के तीनों काल के वर्तमान का प्रत्येक अंश निरपेक्ष सत् है; ज्ञान उसे जैसे का तैसा-यथावत्-जानता है, किन्तु बदलता नहीं है। ज्ञान ने जाना, इसलिए वह अंश वैसा है—ऐसी बात नहीं है। वह स्वयं सत् है।

वर्तमान परिणाम, पूर्व परिणाम के व्ययरूप है; इसलिए वर्तमान परिणाम को पूर्व परिणाम की भी अपेक्षा नहीं रही, तब फिर परपदार्थ के कारण उसमें कुछ हो, यह बात कहाँ रही। केवली भगवान को पहले समय केवलज्ञान हुआ, इसलिए दूसरे समय वह केवलज्ञान रहा—ऐसा नहीं है, किन्तु दूसरे समय के उस वर्तमान परिणाम का केवलज्ञान उस समय के अंश से ही सत् है। पहले समय के सत् के कारण दूसरे समय का सत् नहीं है। इसी प्रकार सिद्ध भगवान को पहले समय की सिद्धपर्याय थी, इसलिए दूसरे समय सिद्धपर्याय हुई —ऐसा नहीं है। सिद्ध में और समस्त द्रव्यों में प्रत्येक समय का अंश सत् है।

यहाँ एक अंश के परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में 'अपने अवसर में'—ऐसी भाषा का उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान प्रवर्तित एक परिणाम की बात है, और वर्तमान में जो परिणाम वर्तता है, वही उसका स्वकाल है। तीनों काल के प्रत्येक परिणाम का जो वर्तमान है, वह वर्तमान ही उसका स्वकाल है। अपने वर्तमान को छोड़कर वह आगे-पीछे नहीं होता। इस प्रकार वर्तमान प्रत्येक परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव है।

क्रमशः

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक चार

आत्मार्थी का पहला कर्त्तव्य (4)

नवतत्त्व का ज्ञान सम्यग्दर्शन का व्यवहार है

आठवाँ बंधतत्त्व है। विकारभाव में जीव का बंध जाना-अटक जाना, वह बंधतत्त्व है। किसी पर के कारण जीव को बंधन नहीं होता, किन्तु अपनी पर्याय विकारभाव में रुक गई है, वही बंधन है। पुण्य-पाप के भावों से आत्मा छूटता नहीं है, किन्तु बंधता है, इससे वे पुण्य-पाप बंधतत्त्व के कारण हैं। उसके बदले पुण्य को धर्म का साधन माने अथवा उसे अच्छा माने तो वह बंध आदि तत्त्वों के स्वरूप को नहीं समझा है। दया, पूजादि शुभभाव अथवा हिंसा, चोरी आदि अशुभभाव, वह विकार हैं, उसके द्वारा आत्मा छूटता नहीं है, किन्तु बंधता है। पुण्य और पाप - यह दोनों भाव मलिन भाव हैं, बंधनभाव हैं। इस समय पुण्य किया जाये तो भविष्य में योग्य सामग्री प्राप्त होगी और योग्य सामग्री प्राप्त हो तो धर्म करने की अनुकूलता हो - ऐसा जिसने माना, उसने पुण्य को वास्तव में बंधतत्त्व नहीं जाना। वास्तव में तो पुण्यभाव के कारण बाह्य सामग्री प्राप्त नहीं होती, क्योंकि पुण्य अलग वस्तु है और अजीव सामग्री अलग स्वतंत्र वस्तु है। पुण्य और बाह्य सामग्री का मात्र निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। इस निमित्त-नैमित्तिक संबंध का जो अस्वीकार करता है, उसे भी पुण्यतत्त्व की व्यवहार से सच्ची श्रद्धा नहीं है। बाह्य अनुकूल सामग्री द्वारा जीव को धर्म करने में ठीक रहता है - इस मान्यता से भी जीव और अजीव की एकता की बुद्धि है। प्रथम भिन्न-भिन्न नव तत्त्वों को जाने बिना अभेद आत्मा की प्रतीति नहीं होती और उस प्रतीति के बिना धर्म नहीं होता।

त्रिकाली जीवतत्त्व के कारण बंध नहीं है और अजीवतत्त्व के कारण भी बंध नहीं है। बंधतत्त्व त्रिकाली जीवतत्त्व से भिन्न है और अजीव से भी भिन्न है। बंध परलक्ष से होनेवाली क्षणिक विकारी वृत्ति है, वह स्वतंत्र है।

बंधतत्त्व त्रिकाली नहीं है, किन्तु क्षणिक आत्मस्वभाव से च्युत होकर जो मिथ्यात्वभाव हों, उन्हें और आत्मा का भान होने के पश्चात् भी जो रागादिभाव हों, उन्हें बंधतत्त्व जाने और कुतत्त्वों का कथन करनेवाले कुदेव-कुगुरुओं को भी बंधतत्त्व में जाने, तब बंधतत्त्व को जाना कहलाता है। श्री अरिहंत भगवान द्वारा कथित और यथार्थ वस्तुरूप इन नव तत्त्वों को भी जो न समझे और कुतत्त्वों को माने, उसने वास्तव में अरिहंत भगवान को नहीं पहिचाना और न वह अरिहंत का भक्त है।

हे भाई ! यदि तू ऐसा कहता हो कि मैं अरिहंतदेव का भक्त हूँ, मैं अरिहंत प्रभु का दास हूँ, तो श्री अरिहंतदेव के कहे हुए नवतत्त्वों को बराबर जान और उससे विरुद्ध कहनेवाले कुदेव-कुगुरु का सेवन छोड़ दे। भगवान ने नवतत्त्व जिसप्रकार कहे हैं, उसप्रकार तू उन्हें व्यवहार से भी न जाने तो तूने अरिहंत भगवान को नहीं माना है, तू व्यवहार से भी अरिहंत भगवान का भक्त नहीं है। व्यवहार से भी अरिहंत भगवान का भक्त वह कहलाता है कि जो उनके कहे हुए नव तत्त्वों को जाने और उनसे विरुद्ध कहनेवालों को बिलकुल माने ही नहीं। नवतत्त्वों को जानने में भी अनेकता का भेद का लक्ष्य है, जबतक उस भेद के लक्ष्य से रुके, तबतक व्यवहारश्रद्धा है, किन्तु परमार्थश्रद्धा नहीं है, जब उस अनेकता का लक्ष्य छोड़कर अभेद स्वभाव की एकता के आश्रय से अनुभव करे, तब परमार्थ सम्यक्दर्शन होता है और तभी जीव अरिहंतदेव का सच्चा भक्त अर्थात् जिनेश्वर का लघुनंदन कहलाता है।

जीव स्वयं बंधनभाव में रुके, उसमें उसे अजीव का निमित्तपना है। अकेले चैतन्य में, अजीव के निमित्त के बिना भी यदि बंधन हो तो वह स्वभाव हो जाये। अकेले चैतन्य में स्वभाव से बंधन नहीं होता, किन्तु चैतन्य की उपेक्षा करके अजीव के लक्ष्य में रुके, तब बंधन भाव होता है। अवस्था में क्षणिक बंधनतत्त्व है - ऐसा जानना चाहिए।

अहो ! अनेक जीव बाहर के झंझटों में ही समय बिता देते हैं, किन्तु

अन्तर में तत्त्व को समझने की दरकार नहीं करते और न उसे समझने के लिए निवृत्ति लेकर सत्समागम करते हैं ! उनको मनुष्य भव प्राप्त करने से क्या लाभ हुआ ? अरे भगवान ! अनंतकाल में सत् को सुनने और समझने का अवसर आया है, इसलिए आत्मा की चिंता करके समझ ले। ऐसा विचार करता रहेगा तो सत् समझने का सुअवसर चला जायेगा और फिर अनंतकाल में भी ऐसा अवसर प्राप्त होना महंगा है। लक्ष्मी टीका करने आये, उस समय मुँह धोने के लिए नहीं जाते; उसीप्रकार यह सत् समझने और चैतन्यलक्ष्मी को प्राप्त करने का अवसर आया है – अपूर्व कल्याण प्रगट करने का अवसर आया है, इस समय 'फिर करेंगे, फिर करेंगे' ऐसा नहीं कहा जाता। यदि इस समय दरकार करके सत् को नहीं समझेगा तो फिर कब ऐसा सुअवसर प्राप्त होगा ? इसलिए प्रथम नवतत्त्वों को जानना चाहिए।

नवतत्त्वों में से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और बंध – इन आठ तत्त्वों का वर्णन हो गया है, अब नवमां मोक्षतत्त्व है। आत्मा की अनंतज्ञान और आनंदमय पूर्ण शुद्ध दशा हो, वह मोक्षतत्त्व है। जो ऐसे मोक्षतत्त्व को पहिचान ले, वह सर्वज्ञदेव को जान लेता है। इससे वह कुदेवादि को नहीं मानता। जो कुदेवादि को मानता है, उसने मोक्षतत्त्व को नहीं जाना है। मोक्ष आत्मा की पूर्ण निर्मल रागरहित दशा है, उस मोक्षतत्त्व को जानने से अरिहंत और सिद्ध भगवान की भी प्रतीति होती है। अरिहंत भगवान अजीव वाणी को ग्रहण करते हैं और फिर सामनेवाले जीवों की योग्यतानुसार उसे छोड़ते हैं – इसप्रकार जो केवली भगवान को अजीव का ग्रहण-त्याग मानते हैं, उन अरिहंत का स्वरूप नहीं समझा है। मोक्षतत्त्व को जाने बिना नवतत्त्व ज्ञात नहीं होते और नवतत्त्वों को जाने बिना धर्म नहीं होता।

प्रत्येक आत्मा का स्वभाव शक्तिरूप से अनंत केवलज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य से परिपूर्ण है, वे देव हैं और उन्हीं को मोक्षतत्त्व प्रगट हुआ है।

ऐसी मुक्तदशा प्रगट होने के पश्चात् जीव को पुनः कभी अवतार नहीं होता। अज्ञानी जीव आत्मा के रागरहित स्वभाव को नहीं जानते और मंदकषायरूप शुभराग को ही वे धर्म मान लेते हैं। उस शुभराग के फल में स्वर्ग का भव होता है। वहाँ रहने की स्थिति बहुत लम्बी होती है, इससे अज्ञानी उसी को मोक्ष मान लेते हैं। उस स्वर्ग में से पुनः अवतार होता है, इसलिए अज्ञानीजन मोक्ष होने के पश्चात् भी अवतारों का होना मानते हैं। जीव की मुक्ति हो जाने के पश्चात् पुनः अवतार होता मानें, वे जीव मोक्षतत्त्व को नहीं जानते हैं, लेकिन बंधतत्त्व को ही मोक्षतत्त्वरूप से मानते हैं। अवतार का कारण तो बंधन है, उस बंधन का एक बार सर्वथा नाश हो जाने के पश्चात् पुनः अवतार नहीं होता। आत्मा की पूर्ण चिदानंद दशा हो गई, उसका नाम मोक्षदशा है, वह मोक्षदशा होने के पश्चात् फिर से अवतार अर्थात् संसारपरिभ्रमण नहीं होता। वे मुक्त हुए परमात्मा किसी को जगत के कार्य करने के लिए नहीं भेजते और न जगत के जीवों को दुःखी देखकर या भक्तों का उद्धार करने के लिए संसार में अवतार धारण करते हैं, क्योंकि उनके रागादि भावों का अभाव है। जगत में जीवों को दुःखी देखकर भगवान अवतार धारण करते हैं - ऐसा जो मानते हैं, वे भगवान-मुक्त आत्मा को रागी और पर का कर्त्ता सिद्ध करते हैं। उन्होंने मुक्त आत्मा को नहीं जाना है। पुर्नभवरहित मोक्षतत्त्व को प्राप्त हुए श्री सिद्ध और अरिहंत परमात्मा देव हैं, जो उनको न पहिचाने, उसे सच्चा पुण्य भी नहीं होता।

अक्षर-अविनाशी चैतन्य की पूर्णानन्ददशा मोक्षतत्त्व है। वह दशा प्राप्त कर लेने के पश्चात् जीव को किसी की सेवा करना नहीं होता। पूर्ण ज्ञान-आनंद दशा को प्राप्त हुए अरिहंत परमात्मा शरीरसहित होने पर भी वीतराग हैं, उनके पूर्ण ज्ञान-आनंद होता है, उनके शरीर में रोग नहीं होता, दवा नहीं होती, क्षुधा नहीं लगती, आहार नहीं होता और न वे किसी को वंदन करते हैं। उनका शरीर स्फटिक जैसा स्वच्छ-परमौदारिक हो जाता है तथा

आकाश में 500 धनुष ऊँचे विचरते हैं। ऐसे अरिहंत परमात्मा को जो न माने, उसने तो मोक्षतत्त्व को व्यवहार से भी नहीं जाना है। श्री केवली भगवान को अनंत ज्ञान और अनंत आनंद प्रगट हुआ, वहाँ चार घातिकर्म तो नष्ट हो गये हैं और चार अघाति कर्म शेष रह गये हैं, किन्तु वे जली हुई डोरी के समान हैं। जिसप्रकार जली हुई डोरी बांधने के काम नहीं आती, उसीप्रकार जो चार अघातिकर्म शेष रहे हैं, वे जली हुई डोरी के समान हैं, उनसे कहीं अरिहंत भगवान को क्षुधा या रोगादि नहीं होते। ऐसे अरिहंत भगवान जीवन्मुक्त हैं और शरीर रहित परमात्मा हो जायें तो सिद्ध हैं। उनकी जिन्हें पहिचान हो उन्हें व्यवहार से नवतत्त्व की श्रद्धा हुई कहलाती है। नवतत्त्वों में मोक्षतत्त्व की श्रद्धा करने से उसमें अरिहंत और सिद्ध की श्रद्धा भी आ जाती है।

इसप्रकार जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष – ऐसे नवतत्त्व अभूतार्थनय से (व्यवहारनय से) विद्यमान हैं, अर्थात् पर्यायदृष्टि से देखने पर वे नवतत्त्व विद्यमान हैं। उन नवतत्त्वों को जाने बिना चैतन्यतत्त्व की सीढ़ी तक नहीं पहुँचा जा सकता और यदि नवतत्त्वों के विकल्प में भी रुका रहे तो भी अभेद चैतन्य का अनुभव नहीं हो सकता। अभेद चैतन्य के अनुभव के समय नवतत्त्वों के विकल्प नहीं होते, इसलिए त्रिकाली चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से देखने पर वे नवतत्त्व अभूतार्थ हैं– अविद्यमान हैं। त्रिकाली तत्त्व का स्वरूप ऐसा नहीं है कि उसमें नव तत्त्वों के विकल्प बने ही रहें। भूतार्थस्वभाव की दृष्टि से तो एक चैतन्यमूर्ति आत्मा ही प्रकाशमान है – ऐसे चैतन्य में एकता प्राप्त हो, वह सम्यग्दर्शन है। प्रथम अभेद के लक्ष्य की ओर जाते हुए नवतत्त्व के विकल्प आते अवश्य हैं, लेकिन उन नवतत्त्वों के विकल्प की ओर की उन्मुखता बनी रहे तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। नवतत्त्वों के भेद का आलंबन छोड़कर अभेद चैतन्य की ओर उन्मुख होकर एकता प्रगट करना, वह नियम से सम्यग्दर्शन है।

क्रमशः

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक चार

मोक्षतत्त्व (3)

गतांक से आगे

श्री प्रवचनसार गाथा 272 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का प्रवचन

अहो, आत्मा में अपूर्व आनंद झरे, ऐसी बात है। जिसप्रकार ग्रीष्म ऋतु के भयंकर ताप में चारों ओर शीतल जल के फव्वारों के बीच बैठकर शांति मानता है, उसीप्रकार यहाँ मुनि को आत्मा के ध्यान में एकाग्र होने से अनंत गुणों में से अमृत के फव्वारे छूटते हैं, आनंद के स्रोत बहते हैं, उनमें विचरता हुआ आत्मा तृप्त-तृप्त हो गया है। संसार के ताप से छूटकर शांति लेने का यह उपाय है।

एक बार एक राजा के मुंह में अमी झरना (थूक आना) बन्द हो गया, इससे मुंह में सूखापन बना रहता था, अमी झरने के बहुत प्रयत्न किये किन्तु सब निष्फल हो गये। अन्त में एक जानकार ग्रामीण आदमी ने हरी इमली की मालाएँ बनाकर चारों तरफ टांग दीं और बीच में राजा को बिठाया, इमली को देखते ही राजा के मुँह में अमी झरने लगा (पानी भर आया), उसीप्रकार आत्मा अनादि से अज्ञान के कारण बाह्य क्रियाकाण्ड में और विकार में भटकता था, वहाँ कभी उसके अनुभव में आत्मा के आनंद का अमृत नहीं झरता था। अनादि से विपरीत उपाय किये और अन्त में उसे ज्ञानी का समागम हुआ, ज्ञानी ने उससे कहा - 'भाई ! आत्मा के आनंद का उपाय सहज है, बाह्योन्मुखता को छोड़कर तू अपने स्वभावोन्मुख हो।' जहाँ यथार्थ भान करके अंतरस्वभावोन्मुख हुआ, वहाँ आत्मानुभव का अमृत झरने लगा। जो मुनि ऐसे आत्मानुभव के अमृत में लीन हुए, वे मुनि ही वास्तव में मोक्षतत्त्व हैं।

यहाँ स्वरूप की रमणता में वर्तते हुए स्वरूप में स्थिर हुए हैं - ऐसे साक्षात् श्रमण को ही मोक्षतत्त्व कह दिया है। वर्तमान में साधक है, तथापि मोक्षतत्त्व कह दिया है। मोक्ष का साक्षात् कारण प्रगट हुआ कि मोक्षतत्त्व हुआ कि मोक्षतत्त्व ही कह दिया है। ऐसी दशा भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य

की थी और भगवान श्री पुष्पदंत तथा भूतबलि आदि संत-मुनियों की भी ऐसी दशा था। आज यहाँ के (लाठी के) जिनमंदिर की प्रतिष्ठा का वार्षिक महोत्सव है और श्रुतपंचमी का दिवस है, महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि के साथ संबंध रखनेवाले महान षट्खण्डागम की पूजा का आज का दिन है। श्री भूतबलि और पुष्पदंत आचार्यदेवों ने उसकी रचना की थी। उनके उपरोक्तानुसार दशा विद्यमान थी। स्वरूप के आनंद में लीन होने से वह दशा प्रगट हुई है।

संसारतत्त्व के वर्णन में द्रव्यलिंगी मुनि को नित्य अज्ञानी और श्रमणाभास कहा था, यहाँ मोक्ष की तैयारीवाले भावलिंगी साधु को नित्य ज्ञानी एवं साक्षात् श्रमण कहा है। जो शुद्धोपयोग में स्थिर हुए वे साक्षात् श्रमण हैं। जहाँ ऐसी दशा प्रगट हुई, वहाँ साधक-साध्य के बीच के भेद को तोड़कर कहते हैं कि मोक्षतत्त्व ही घर आ गया। आत्मा स्वयं मोक्षतत्त्व हो गया। साक्षात् मोक्षदशा तो भविष्य में होना है, किन्तु मोक्ष के कारणरूप दशा प्रगट हो गई, वहाँ उसे वर्तमान में ही मोक्षतत्त्व कहा है। क्योंकि उस आत्मा ने पूर्व के समस्त कर्मों के फल को लीला से नष्ट किया है, कष्ट से नहीं किन्तु लीला से नष्ट किया है। जिसमें कष्ट मालूम हो, वह तो बुरा ध्यान है, उससे धर्म नहीं होता। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का निश्चय करके उसमें लीन होनेवाले मुनिवरों ने सहजमात्र में पूर्व कर्म के फल को नष्ट किया है, आगामी कर्मफल को वे उत्पन्न नहीं करते, इससे पुनः प्राणधारणरूप दीनता को प्राप्त नहीं होते और विकारीभावोंरूप परावर्तन के अभाव के कारण शुद्धस्वभाव में अवस्थित वृत्तिवाले रहते हैं, इससे वे मुनिजन ही मोक्षतत्त्व हैं।

शरीर को धारण करना, वह दीनता है और चैतन्य की निर्मल आनंददशा प्रगट करके उसमें लीन रहना, वह बादशाही है। आत्मा सदैव नवीन-नवीन विकारभावरूप से परिवर्तित होता रहता था और उसके फल में नवीन-नवीन शरीरों को धारण करनेरूप दीनता को प्राप्त होता था, वह

शेष पृष्ठ 30 पर.....

प्रेरक-प्रसंग

मैं खून नहीं पी सकता

महात्मा गाँधी ने कहा है—'मैंने गुरु नहीं बनाया; किन्तु मुझे कोई गुरु मिले हैं तो वे हैं—रायचन्दभाई।'

रायचन्दभाई बम्बई में जवाहरात का व्यापार करते थे। उन्होंने एक व्यापारी से सौदा किया। यह निश्चित हो गया कि अमुक तिथि तक अमुक भाव में इतना जवाहरात वह व्यापारी देगा। व्यापारी ने रायचन्दभाई को लिखा-पढ़ी कर दी। संयोग की बात! जवाहरात के मूल्य बढ़ने लगे और इतने अधिक बढ़ गये कि यदि रायचन्दभाई को उनके जवाहरात वह व्यापारी दे तो उसे इतना घाटा लगे कि उसको घर तक नीलाम करना पड़े।

श्री रायचन्दभाई को जवाहरात के वर्तमान बाजार भाव का पता लगा तो उस व्यापारी की दुकान पर पहुँचे। उन्हें देखते ही व्यापारी चिन्तित हो गया। उसने कहा—मैं आपके सौदे के लिए स्वयं चिन्तित हूँ। चाहे जो हो, वर्तमान भाव के अनुसार जवाहरात के घाटे के रुपये अवश्य आपको दे दूँगा, आप चिन्ता न करें। रायचन्दभाई बोले—'मैं चिन्ता क्यों न करूँ? तुमको जब चिन्ता लग गयी है तो मुझे भी चिन्ता होनी ही चाहिए। हम दोनों की चिन्ता का कारण यह लिखा-पढ़ी है। इसे समाप्त कर दिया जाये तो दोनों की चिन्ता समाप्त हो जाये।'

व्यापारी बोला—'ऐसा नहीं है। आप मुझे दो दिन का समय दें, मैं रुपये चुका दूँगा।' रायचन्दभाई ने लिखा-पढ़ी के कागज के टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा—'इस लिखा-पढ़ी से तुम बँध गये थे। बाजार भाव बढ़ने से मेरा चालीस-पचास हजार रुपया तुम पर लेना हो गया, किन्तु मैं तुम्हारी परिस्थिति जानता हूँ। ये रुपये मैं तुमसे लूँ तो तुम्हारी क्या दशा होगी? रायचन्द दूध पी सकता है, खून नहीं पी सकता।' वह व्यापारी तो रायचन्दभाई के पैरों में गिर पड़ा। वह कह रहा था—'आप मनुष्य नहीं देवता हैं।'

शिक्षा - अच्छा हो कि छल-कपट, ठगी-मक्कारी, झूठ-फरेब करके, किसी प्रकार भी दूसरे की परिस्थिति से लाभ उठाने को आतुर आज का समाज इन महापुरुषों के उदार चरित्र से कुछ प्रेरणा ले।

साभार : बोध कथायें

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री विद्यानन्दस्वामी

जिनशासन के बालब्रह्मचारी समर्थ आचार्य भगवंतों में आपकी गणना है इतना ही नहीं, आपने एक महान सारस्वताचार्य की भाँति मौलिक व टीका ग्रन्थों द्वारा जिनेन्द्र भगवान की वाङ्मय जिनवाणी को अति सुदृढ़ किया है। आपकी अपनी मौलिक प्रतिभा आपके न्याय व दर्शनशास्त्रों में स्पष्ट झलकती है।

आप मगधराज अवनिपाल की सभा के एक प्रसिद्ध मनीषी थे। आपका पूर्व नाम यद्यपि पात्रकेसरी होने पर भी, आप आचार्य पात्रकेसरी से भिन्न ही हैं व काफी शताब्दी पश्चात् के आचार्य हैं। आप कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे। आपका जन्म प्रखर ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

एक दन्तकथा ऐसी भी है कि वे मूलत: वैदिक मतानुयायी थे। अत: जिनमन्दिर नहीं जाते थे। किन्तु एक बार ऐसी घटना घटी कि वे जब जिनमन्दिर के निकट से जा रहे थे, उस समय मन्दिर में से देवागमस्तोत्र (आप्तमीमांसा) के शब्द उनके कर्णपट पर पड़े। पूर्व संस्कार से या स्वयं स्फूरणा से उस स्तोत्र के भाव सहज ही समझ में आने लगे। अत: उनके पाँव मन्दिर की ओर बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों मन्दिर की ओर बढ़ते गये, त्यों-त्यों उस स्तोत्र के शब्दों के भाव स्पष्ट होते गये। इस स्तोत्र के भाव ग्रहण से वे भावरूप विद्या+आनन्द=विद्यानन्द बन गये अर्थात् जिनभक्त बन गये। ऐसा आप स्वयं ने भी लिखा है।

कई लोगों का ऐसा मानना है कि आपको उस समय में भिन्न-भिन्न मतों के विद्वानों द्वारा होते शास्त्रार्थों को देखने व भाग लेने का शौक था। उसमें से जैन के अनेकान्त व स्याद्वाद दर्शन की गहनता, गम्भीरता, सटीकता, न्यायपूर्ण व अकाट्य प्रतीत होने से आपको जैनधर्म में विशेष दृढ़ श्रद्धा हो गयी।

जन्म से वैदिक धर्मी होने से आपके समय के प्रसिद्ध वैदिक धर्म जैसे, कि न्याय (नैयायिक), मीमांसक, वेदान्त, सांख्य, योग, प्रभाकर आदि

वैदिक दर्शन का आपको भरपूर अभ्यास होने से, आप वैदिक धर्म में पाण्डित्य व प्रसिद्ध विद्वान थे। आपको बौद्ध दर्शन का भी काफी अभ्यास था। जैनमतानुयायी होने पर आपको देवागम-स्तोत्र (आप्तमीमांसा), अष्टशती, तत्त्वार्थसूत्र, जल्पनिर्णय, वादन्याय, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थ-वार्तिक, स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यानुशासन, सन्मतिसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, न्यायविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, लघीयस्त्रयी, त्रिलक्षणादर्शन, वादन्याय-विचिक्षण, षट्खण्डागम व कई श्वेताम्बर ग्रन्थ—ऐसे अनेक ग्रन्थों का अभ्यास था। ऐसा आपके ग्रन्थों में आये उद्धरणों से प्रतीत होता है। उद्धरणों के अलावा आपके जीवन से प्रतीत होता है कि आपको समयसारादि अनेक अध्यात्म शास्त्रों का भी अभ्यास था।

आपने नन्दिसंघ अन्तर्गत दीक्षा ग्रहण की थी। आपकी लेखनी पर से स्पष्ट होता है कि आपने अल्पवय में अन्तरंग में आत्मज्ञान प्राप्त कर द्रव्य-भावमय मुनिपना अंगीकार किया था। अत: वे मुनिधर्म की जीवनचर्या के बारे में अति ही सुस्पष्टरूप से भावात्मक (भावलिंगमय) थे।

आपका प्रभाव आपके पश्चात्वर्ती भगवान आचार्य माणिक्यनन्दि, वादिराज, प्रभाचन्द्र, अभयदेव, देवसूरि आदि कई आचार्यों की रचनाओं में प्रतीत होता है।

अन्तत: आप बाल-ब्रह्मचारी, महान तपस्वी, सिद्धान्त व दार्शनिकता के प्रखर विद्वान आचार्य थे। आपकी भाषा बड़ी परिमार्जित, संक्षिप्त व प्रभावशाली थी।

आपकी रचनाएँ—(1) आप्तपरीक्षा (स्वोपज्ञटीका सहित), (2) प्रमाण-परीक्षा, (3) पत्र-परीक्षा, (4) सत्यशासन परीक्षा, (5) श्रीपुर पार्श्वनाथस्तोत्र, (6) विद्यानन्द महोदय, (7) अष्टसहस्त्री, (8) तत्त्वार्थ-श्लोकवातिकालंकार, (9) युक्त्यानुशासनालंकार हैं।

इतिहासकारों के अनुसार आपका समय ई.स. 776 से 840 के बीच होना निर्णित होता है।

'अष्टसहस्त्री' व 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार' के रचयिता आचार्य विद्यानन्दस्वामी को कोटि-कोटि वन्दन!

....पृष्ठ 26 को शेष

संसारतत्त्व था और आत्मा का भान प्रगट करके उसके आनंद में ही स्थिरता से आत्मा एक भावरूप से स्वरूप में ही स्थिर रहता है और पुनः प्राणधारणरूप दीनता को प्राप्त नहीं होता – वह जीव ही मोक्षतत्त्व है, मुनि का आत्मा ही अभेदरूप से मोक्षतत्त्व है।

इस प्रकार 271वीं गाथा में संसारतत्त्व का और 272वीं गाथा में मोक्षतत्त्व का वर्णन किया। अब, 273वीं गाथा में मोक्षतत्त्व के साधनतत्त्व का वर्णन करेंगे।।272।।

क्रमशः

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक चार

वैराग्य समाचार

दिल्ली : श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी स्व० पण्डित श्री कोमलचन्द्र जैन देदामूरी, खनियांधाना का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। ज्ञात हो कि बालब्रह्मचारी प्रतिष्ठाचार्य पण्डित अभिनन्दनकुमार जैन की बहिन एवं पण्डित राकेश जैन शास्त्री की मातुश्री थीं।

दिल्ली : श्रीमती सन्तरादेवी जैन का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप श्री निर्मलकुमार जैन सेठी, राष्ट्रीय अध्यक्ष, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की धर्मपत्नी थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों–ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

नवीन प्रकाशन – मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, निःशुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़–आगरा राजमार्ग, सासनी–204216
सम्पर्क सूत्र–9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

समाचार-सार

भूतपूर्व मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा संस्कार कक्षा

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में छात्रों के स्वर्णिम भविष्य को देखते हुए अगस्त माह में भूतपूर्व मङ्गलार्थी ज्ञायक जैन, सुमित जैन द्वारा ऑनलाइन, इंजी. शान्तनु जैन, वैज्ञानिक शालीन जैन, पण्डित अनुभव करेली, निशान्त जैन, अगम जैन, आई.पी.एस., और डी.पी.एस. के भूतपूर्व छात्र प्रत्यूष गुप्ता, सिविल जज; डॉ. अली, प्रो. आस्था जैन, डॉ. नैना आदि के द्वारा छात्रों को भविष्य सम्बन्धी मार्गदर्शन दिया गया। ज्ञात हो कि प्रत्येक शुक्रवार को इसी तरह किसी न किसी विशिष्ट प्रतिभा से छात्रों को मिलाया जाता है।

अभिभावक मीटिंग सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अध्ययनरत छात्रों के लौकिक एवं धार्मिक विकास हेतु वर्ष में दो बार अभिभावक मीटिंग का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष रक्षाबन्धन के अवसर पर 15 अगस्त को अभिभावक मीटिंग का आयोजन हुआ। जिसमें अभिभावकों को छात्रों की प्रगति रिपोर्ट सुनायी गयी एवं छात्रों की समस्याओं का समाधान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री, सौधर्म लुहाड़िया, ऋषभ जैन आदि ने किया।

रक्षाबन्धन पर कार्यक्रम

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ तीर्थधाम मङ्गलायतन में साधर्मी वात्सल्य पर्व पर प्रातः काल पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन तथा पण्डित सचिनजी का स्वाध्याय का विशेष लाभ प्राप्त हुआ। पश्चात् मङ्गलार्थी छात्रों के द्वारा वात्सल्य पर्व का आयोजन किया गया। सायंकालीन भक्ति के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम में आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल के जीवनवृत्त पर एक लघु नाटक का मंचन किया गया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में तत्त्व प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तत्त्वप्रचार की शृंखला में यहाँ पण्डित विनोद जैन, जबेरा के द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार के आधार से उभयाभासी मिथ्यादृष्टि के स्वरूप पर और पण्डित कमलेश शास्त्री के द्वारा ग्रन्थाधिराज समयसार की 23-24 गाथा पर विशेष स्वाध्याय का लाभ मङ्गलार्थियों को प्राप्त हुआ।

तीर्थधाम मङ्गलायतन आपका हार्दिक स्वागत करता है

आपका सहयोग अपेक्षित है

1.	**भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन**	
	एक वर्ष के लिए (एक विद्यार्थी)	25,000/-
	सम्पूर्ण अध्ययन काल के लिए (एक विद्यार्थी)	1,00,000/-
2.	**अतिथि भोजनशाला**	
	एक माह का भोजन	2,00,000/-
	एक दिन का भोजन (जलपान सहित)	15,000/-
	एक समय का भोजन	6,100/-
	एक समय का जलपान	3,100/-
3.	**तीर्थधाम मङ्गलायतन : ध्रुवपूजन तिथि**	
	सभी जिनमन्दिर	5,100/-
	प्रत्येक जिनमन्दिर हेतु ध्रुवपूजन तिथि	1,100/-
4.	**'मङ्गलायतन' मासिक पत्रिका**	
	अपनी ओर से एक अंक के प्रकाशन हेतु	21,000/-
	आजीवन सदस्यता	500/-
5.	**'मङ्गल वात्सल्य निधि'**	
	आजीवन सदस्यता (प्रति माह)	1,000/-

आप अपनी सहयोग राशि सीधे बैंक में भी जमा करवा सकते हैं।

नाम – **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़**

बैंक – **पंजाब नेशनल बैंक** ब्रांच – **रेलवे रोड, अलीगढ़**

A/c No. - 1825000100065332 IFSC - PUNB0001000

PAN - AABTA0995P

नोट – भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

छपते-छपते

तीर्थधाम मङ्गलायतन में दशलक्षण महापर्व मंगलवार, 03 सितम्बर से गुरुवार, 12 सितम्बर 2019 तक उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। स्थानीय एवं बाहर से पधारे आत्मार्थियों को स्थानीय विद्वानों के साथ-साथ डॉ० विवेक जैन एवं विदुषी पुष्पाबेन का लाभ प्राप्त हो रहा है। विस्तृत समाचार आगामी अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

वात्सल्य पर्व रक्षाबन्धन पर भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थियों द्वारा प्रस्तुत नाटक की झलकियाँ

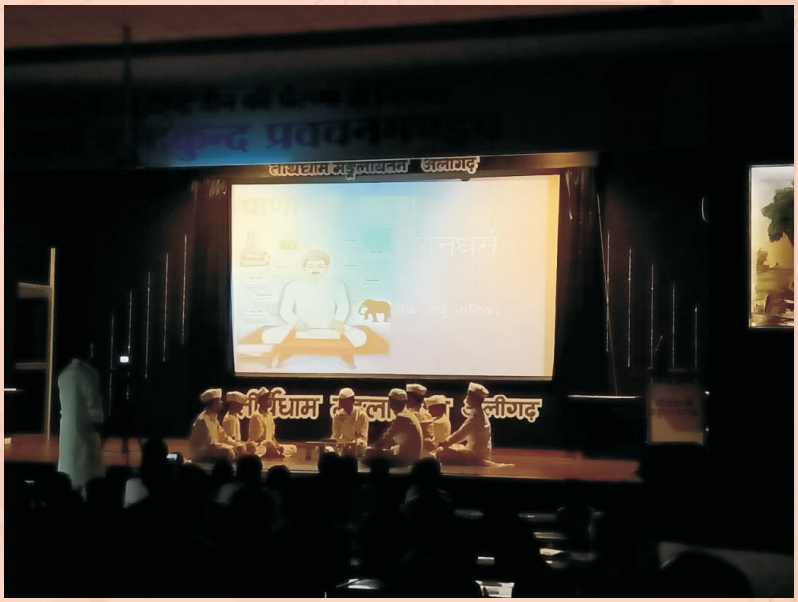

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मुनिराज की परिणति में शुद्धचारित्र की धारा

वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में ही ऐसे सच्चे सन्त होते हैं, जिन्हें स्वरूप की सच्ची दृष्टि और रमणता नहीं है; वे भले ही साधु नाम धराते हों परन्तु वे सब खोटे/मिथ्या हैं। जो स्वरूप के आनन्द में रमते हैं, वे आत्मा-रामी हैं, जो राग में रमते हैं, वे अज्ञानी हैं। वीतराग परमेश्वर के मार्ग में जो सन्त होते हैं, उन्हें स्वरूप की निर्मलदृष्टि और स्वरूप में रमणता होती है - ऐसे सन्त को भूमिकानुसार शुभभाव आने पर भी भेदज्ञान और शुद्धचारित्र की धारा निरन्तर प्रवाहित ही रहती है। *(- वचनामृत प्रवचन, गुजराती, 4/54)*

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com